ISSN: 2349-7637 (Online)
Volume-5, Issue-12, December 2018
RESEARCH HUB – International Multidisciplinary Research Journal
Research Paper
Available online at: www.rhimrj.co.in

''प्रो0 रानाडे का रहस्यवाद उपनिषद में निहित रहस्यवादी विचारधारा का पुनर्आख्यान''

डॉ. मंजरी शुक्ला

एसोसिएट प्रोफसर, दर्शनशास्त्र विभाग
एस.एस. खन्ना गर्ल्स डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद

लब्ध प्रतिष्ठित आचार्य डॉ0 रामचन्द्र दत्तोत्रय रानाडे का स्थान भारत के सुप्रसिद्ध मनीषी, नव्य वेदान्त परम्परा के चिन्तक स्वामी विवेकानन्द, महर्षि अरविन्द घोष, डॉ0 राधाकृष्णन् के समकक्ष है। भारतीय दर्शन की परम्परा में दर्शन साध्य व साधन दोनों हैं इसीलिए किसी भी दार्शनिक की विचारक और साधक दोनों होना चाहिए। प्रो0 रानाडे ने उपनिषद में निहित रहस्यवादी विचारधारा की पुनर्व्याख्या गहन अनुभूतियों के द्वारा कर इसी परम्परा का पुष्ट किया। उन्होंने मौन घड़ियों में जो अनुभूत किया उसीको दार्शनिक सत्य के रूप में प्रतिस्थापित किया। रानाडे के अनुसार–'तत्वदर्शन मात्र दर्शन है जबकि रहस्यवाद दर्शन के अतिरिक्त स्पर्शन, श्रवण, संभाषण, घ्राण और रसन भी है' इस आत्म अनुभव के द्वारा ही रहस्यवादी को तत्व का अन्तर्दर्शन होता है। स्वानुभूति द्वारा सिद्ध तत्व दर्शन के द्वारा प्रपंचित नहीं हो सकता। रानाडे ने रहस्यवाद की इस प्रक्रिया को इतना प्रभावशाली माना कि उसका प्रयोग उन्होंने तत्वमीमांसा, नीतिमीमांसा तथा ज्ञान मीमांसा के क्षेत्र में समान रूप से किया। इसीलिए डॉ0 राधाकृष्णन् ने कहा था–उनके लिए आत्मानुचिंतन एक समर्पित जीवन मार्ग है।

रानाडे का दर्शन आत्मानुभूति का दर्शन है। जिसका आधार धर्मग्रन्थ, वेद उपनिषद और गीता हैं। उपनिषदीय रहस्यवाद के उद्घाटनकर्ता के रूप में प्रो0 रानाडे वह सर्वप्रथम व्यक्ति कहे जा सकते हैं जिन्होंने वेद एवं उपनिषद के विचारों को ऋषियों की दृष्टि से ही देखने का प्रयास किया। प्रो0 रानाडे के शब्दों में–हम भिन्न–भिन्न उपनिषदों में आत्म साक्षात्कार के रहस्यामय निर्देश पाते हैं जो गुदड़ी के लाल की तरह प्रज्ञात्मक आवरण में छिपे हुए हैं, तथा जिनकी अमूल्यता को कोई पारखी ही समझ सकता है। आत्मानुभूति और उसकी अभिव्यक्ति में उतना ही भेद हैं जितना किसी वस्तु के स्वरूप के ज्ञान और अनुभव में होता है।

रानाडे का दर्शन रहस्यवादी दर्शन है। उनका कथन है–''किसी तत्व दार्शनिक सिद्धान्त की सच्चाई और प्रबलता का मानदंड यह है कि उसमें जीवन को कितना दिव्य और निर्वाह योग्य बनाने की शक्ति है। उन्होंने अद्वैत वेदान्त के समर्थन में रहस्यवादी प्रवृत्ति की स्थापना जिस सरल मार्ग द्वारा किया उनके पूर्ववर्ती दार्शनिकों मे कोई उस मार्ग को उस गहनता में ले जाने में सक्षम नहीं हुआ। कदाचित् इसका कारण आध्यात्मिक वातावरण में उनको प्राप्त होने वाले बाल्य संस्कार थे और उनकी माँ द्वारा भावतिरेक में कहा गया यह कथन–''मेरे प्रिय तुम वास्तव में मेरी गोद में एक संत के रूप में पैदा हुए हो उनके जीवन में चरितार्थ हुआ।

अध्येता रानाडे का दार्शनिक समझ का प्रमाण 1914 में प्राप्त हुआ, जब उन्होंने एम.ए. दर्शन की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर प्रथम स्थान अर्जित किया और चांसलर पदक तथा के.टी. तेलंग पुरस्कार प्राप्त हुआ। 1926 ई. में रानाडे की पुस्तक श। बवदेजतनबजपअम ैनतअमल व ि न्चीपीकपब चीपसवेवचीलश प्रकाशित हुई। जिससे उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई। इस ग्रन्थ के प्रभाव से ही इलाहाबाद विश्वविद्यालय के तत्कालीन उपकुलपति डॉ. गंगानाथ झा के मन में प्रो0 रानाडे के प्रति सम्मान जागृत हुआ और उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग के अध्यक्ष पद हेतु आमंत्रित किया। रानाडे के लिए अर्थ व सम्मान से अधिक प्राथमिकता शारीरिक व आध्यात्मिक दृष्टिकोण से उपयुक्त जलवायु का होना था। इस संदर्भ में आश्वस्त होने के बाद ही उन्होंने इस आमंत्रण को स्वीकार किया। कुछ समय के लिए उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय के उपकुलपति पद को भी सम्मानित किया। अवकाश प्राप्त करने पर उन्हें विश्वविद्यालय के एमिरेट्स प्रोफेसर के सम्मान से विभूषित किया गया और उन्हें यही से डी.लिट की उपाधि भी ससम्मान प्रदान की गई। 1946 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से सेवा निवृत्त होकर रानाडे निम्बाल चले गये और एक आध्यात्मिक आश्रम की स्थापना की जहां वे नित्य प्रति अपरोक्षानुभूति का व्याख्यान करते थे। दिनांक 6 जून 1956 को शांत चित्त से ध्यानमग्न अवस्था में निम्बाल में ही शरीर का परित्याग कर महासमाधि प्राप्त की और उन्होंने स्वय के कहे गये कथन कि–''प्रारम्भ से ही आध्यात्मिक जीवन मेरा लक्ष्य रहा है, आशा है यही उपसंहार भी होगा को सत्य सिद्ध किया। उनका सम्पूर्ण जीवन ही ईश्वर के सर्वसुलभ मार्ग की खोज हेतु अध्ययन एवं साधना में व्यतीत हुआ। जिसमें अनाहतनाद का श्रवण और अप्रकाशित प्रकाश का दर्शन

उन्होंने ईश्वर की कृपा माना और साधना मार्ग पर अनेकों बार इस ईश्वरीय कृपा को प्राप्त कर आनन्दित होते रहे। उन्होंने स्वयं कहा–''मैंने अपने चालीस वर्ष ईश्वर की समस्या के प्रसंग में समकालीन दृष्टिकोण को लेकर भारतीय दर्शन और पाश्चात्य दर्शन में निहित विभिन्न दृष्टिकोण द्वारा और कर्नाटक रहस्यवाद, हिन्दी रहस्यवाद और महाराष्ट्रीय रहस्यवाद आदि द्वारा वक्तव्य देते हुए बिता दिये।''

दार्शनिक और वैज्ञानिक रूचि के समन्वित व्यक्तित्व प्रो. रानाडे वैज्ञानिक दृष्टिकोण को मनोवैज्ञानिक विधि द्वारा परीक्षण करते व अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए नये शब्दों का सृजन भी करते थे। श्री पी.सी. केलकर का कथन है–अपने मन में आध्यात्मिक और धार्मिक झुकाव रखते हुए वे प्रत्येक प्रयोग के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि विज्ञान ईश्वर की शक्ति का प्रमाण है।

रहस्यवाद जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है कि जीवन और ईश्वर का, आत्मा और परमात्मा का संबंध एक ऐसा रहस्य हैं जिसे व्यक्ति केवल अनुभव के द्वारा समझ सकता है। अनुभव की गूढ़ता शब्दों (भाषा) की सीमा को प्रकट करती है। भाषा केवल पार्थिव जगत की वस्तुओं के संबंध में विवरण दे सकती हैं किन्तु ईश्वरीय अनुभव ऐसा प्रगाढ़ और अलौकिक होता है कि भाषा उसे व्यक्त करने में समर्थ नहीं होती। संध्या की अनुपमता, सूर्य की अस्तांचल की ओर गमन या समुद्र की उदात्त लहरें क्या महसूस कराती हैं उसे शब्दों में व्यक्त करना असंभव है। जब जीवन के स्थूल और दृश्यमान अपनी विषय अपनी गहनता में व्यक्ति को मौन बना सकते है तो आत्मा और परमात्मा के संबंध की अनुभूति भाषा में कैसे व्यक्त हो सकती है? अतः मनुष्य लघु और विराट के अनुभव को मानवीय भाषा में प्रकट करने में असमर्थ है। इस प्रयास में भाषा के असंख्य प्रयोग पर भी अनुभवकर्ता का मन कहता है नेति–नेति। इसीलिए उपनिषदों में कहा गया–यह केवल मौन द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। तैत्तिरीय उपनिषद में कहा गया–यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्त मनसा सह, अर्थात उस परमतत्व तक वाणी नहीं पहुँच सकती और न ही मन पहुँच पाता है। क्योंकि 'आनन्दों ब्रह्मति व्यजानात्' अर्थात् आनन्द ही ब्रह्म है। कठोपनिषद कहता है–इस परमतत्व को न तो प्रवचन से और न मेधा से और न श्रवण से ही प्राप्त किया जा सकता है। केनोपनिषद में कहा गया–न तत्र चक्षुरगच्छामि। कठोपनिषद के अनुसार–नैषा तर्केण मति आपनीया। यह अनुभव इतना अन्तरंग होता है कि जैसे नमक पानी में घुल जाता है। वैसे ही मन विराट में खो जाता है। इसलिए प्रो. रानाडे ने कहा–रहस्यवाद बुद्धि का नही अनुभूति का विषय है।

उपनिषद विचारों की आधारभूमि पर ही अपने विश्वासों को निर्मित करते हुए रानाडे ने कहा दर्शनशास्त्र द्वारा निर्देशित तर्क प्रधान बौद्धिक प्रयास की अपेक्षा रहस्यवाद का अनुभूति प्रधान मार्ग अधिक प्रमाणिक है। यह मार्ग आत्मानुभूति की ओर प्रेरित करता है जिसके फलस्वरूप सहज ही द्वैतभाव विनष्ट होकर परमसत्य का साक्षात् अन्तदर्शन प्रस्तुत करता है। जिसमें नीति, उदात्त और दिव्यता तीनों लीन है। प्रत्येक आध्यात्मिक अनुभूति अपने अन्दर उदात्त समेटे हुए है। यह सत्य हैं लेकिन इसके साथ यह भी सत्य है कि प्रकृति की प्रत्येक क्रिया पर उदात्त की छाप सुस्पष्ट है। जिस शक्ति के द्वारा मनुष्य आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश करता है वह प्रातिभ शक्ति है। जो अतिन्द्रिय व बुद्धि से परे है। यह बुद्धि से अगम्य वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त कराती है।

रानाडे ने रहस्यवादी मार्ग की पुष्टि के लिए भारतीय दर्शन में वर्णित प्रमाणों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए इसे स्वतःप्रमाण्यवाद के रूप में ग्रहण किया। प्रत्यक्ष का तात्पर्य उन्होंने अन्तर्दर्शन से लिया जिसमें अपरोक्ष अनुभूति होती है उसे वे स्वतः प्रमाणिक और सार्वभौमिक मानते है यह आशय इन्द्रिजन्य अनुभव या प्रत्यक्ष के संदर्भ में नहीं है। रानाडे ने अनुमान को सीमित अर्थ में प्रमाण माना है। उपमान को वे प्रकारान्तर से सादृश्यानुमान मानते हैं जिनसे प्रसंभावित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं अतः यह वैध नहीं है। रानाडे के शब्दों में–''इस अन्योन्याश्रित सादृश्य में सादृश्यों की अनिश्चित एवं अनिर्धारित कोटियां अंतर्भूत है।'' सामान्य रूप से उन्होंने शब्द को प्रमाण नहीं माना। अर्थापत्ति और अनुपलब्धि को उन्होंने अनावश्यक माना। रानाडे के विचार में – तर्क श्रुति सापेक्ष है और श्रुति अनुभव सापेक्ष, किन्तु ईश्वरानुभूति के प्रयोग में दोनों असमर्थ और अनावश्यक हैं। तर्क परमार्थ को द्वैत में विभाजित कर देता है इसलिए अनावश्यक है और श्रुति इसलिए अनावश्यक है क्योंकि रहस्यवादी का लक्ष्य ईश्वर साक्षात्कार है विशुद्ध ज्ञान नहीं। अतः रहस्यवाद के परिप्रेक्ष्य में रानाडे अनुभूति को ही प्रमाण मानते हैं।

समस्त दार्शनिक विचारों का प्रयोजन एक है। वे सभी मानवीय चिन्तन को सर्वोत्कृष्टता की ओर ले जाते हैं किन्तु उनके स्वरूप एवं प्रतिपादन में भिन्नता है। जिससे सामान्य व्यक्ति भ्रमित हो सकता है। रहस्यवाद मानव समाज के लिए उपयोगी एवं कल्याणकारी रहस्यों की सरल एवं ग्राह्य अभिव्यक्ति है। रहस्यवादी दर्शन में समाहित विचार एवं प्रेरणा आस्था परिशोधन एवं आदर्शों की स्थापना का एक सशक्त माध्यम है। रहस्यवाद अपनी उत्पत्ति मानव मन के निरन्तर शोधपरक प्रयासों में मानता है। यह विवादों से रहित सहज बोधगम्य दर्शन है जो स्वतः प्रमाणित है।

ब्रह्म जिज्ञासा को ही उन्होंने मनुष्य का परम कर्तव्य माना। ब्रह्म जिज्ञासा की चरम परिणती साक्षात् अनुभूति में है। यह अनुभूति उपनिषदों के इन कथनों से आत्मावा अरे दृष्टव्यः श्रोतव्यः मन्तव्यः निदिध्यासितव्यं आदि कथनों द्वारा प्रमाणित होती है। ''उपनिषद एक ऐसी आदृश शक्ति का संरक्षण स्वीकार करते थे जो आत्मा को अनन्त प्रकाश एवं परमानन्द की ओर ले जाता है। लेकिन अन्तिम निष्पति अतीन्द्रिय ज्ञान के माध्यम से ही संभव है।''

रानाडे के अनुसार भौतिक वस्तुओं की सत्ता की कसौटियां आत्मा व ईश्वर के अस्तित्व हेतु मानक नहीं बन सकती। इन कसौटियों के आधार पर ईश्वर व आत्मा को प्राप्त करने का उपक्रम अविवेकपूर्ण और अवैज्ञानिक है। उनके विचारों में ईश्वर साक्षात्कार केवल बुद्धिजन्य नहीं है। ईश्वर ‘‘भक्तिमय निदिध्यासन’’ है। जिसमें आत्मा के आलोक में परमात्मा का दर्शन होता है। इस दर्शन के साधक की पात्रता अन्तर्मुखी होकर, शान्त संयमित व तपोमय जीवन व्यतीत करना है।

मिस्टीसिजम इन महाराष्ट्र में प्रो. रानाडे ने रहस्यवाद को वह मानसवृत्ति कहा जिसके अन्तर्गत ईश्वर की अपरोक्ष एवं आंतप्रज्ञ चेतना आती है। वे इस आंतप्रज्ञ चेतना को ‘‘ईश्वर का विश्रामपूर्ण तथा प्रेय निहिध्यासन’’ और मौन ‘आनन्द भोग’ कहते हैं। इस रूप में –

1. रहस्यानुभूति का प्रमाण अंतःप्रज्ञा है।
2. यह अतीन्द्रिय है।
3. प्रेयरूप में ईश्वर के निरन्तर स्मरण से ईश्वर का अनुभव कराने वाली अंतप्रज्ञा व्यक्त होती है।
4. यह अनुभूति परम संतोष एवं परमानन्द प्रदान करने वाली है।

रानाडे के विचारों में ईश्वरानुभूति के लिए सद्गुरू का भी महत्व है क्योंकि वह साधक को निरन्तर नामस्मरण की दीक्षा देता है। इसके अतिरिक्त साधना मार्ग पर चलने के लिए ईश्वरीय कृपा का होना भी आवश्यक है। लेकिन सबसे अधिक आवश्यक है साधक का अपना प्रयास। सतत् साधना एवं गुरू के प्रति असीम श्रद्धा से युक्त परमार्थ के जिज्ञासुओं के अन्यथा अन्धकारमय पक्ष को दीप स्तम्भों के रूप में उनके लिए मार्ग निर्देशित करने के लिए आत्म साक्षात्कार के अनुभवों को स्वयं प्रच्छन्न रूप में व्यक्त होना पड़ता है।’’

रानाडे के अनुसार साधक में इच्छा, भावना और कर्म से ही आत्मानुभूति हेतु जागरण प्रारम्भ होता है। उनके शब्दों में–सभी रहस्यवादियों को दार्शनिक होने की जरूरत नहीं है और न सभी को कर्मठ होने की आवश्यकता है। किन्तु सच्चे रहस्यवादी में ज्ञान, भावना और कर्म इन तीन शक्तियों में कम से कम एक का पूर्ण विकास होना चाहिए अन्यथा वह रहस्यवादी कहने के सर्वथा अयोग्य है। निष्काम कर्म के माध्यम से ईश्वर साक्षात्कार का सहज मार्ग प्राप्त होता हैं। रहस्यानुभूति में आत्मा एवं ब्रह्म की एकता का ज्ञान ही पर्याप्त नहीं हैं बल्कि ईश्वर के प्रति अगाध प्रेम एवं भक्ति का भी योग अपेक्षित बताया गया है।

रहस्यवाद वह व्यापक अभिवृत्ति है जिसमें जाति, सम्प्रदाय या राष्ट्रगत भेद के लिए कोई स्थान नहीं है। रानाडे के अनुसार–संसार के समस्त रहस्यवादियों के ईश्वर साक्षात्कार की कुछ सामान्य विशेषताएं हैं–

- ऐसे दार्शनिकों के व्यक्तित्व में नैतिक और आध्यात्मिक तत्व निहित होता है जिससे आध्यात्मिक जीवन में आस्था होती है।
- उनमें कुछ नैतिक व आध्यात्मिक तैयारी अपेक्षित है।
- आदर्श का निर्धारण ।
- आदर्श और ईश्वर में परस्पर संबंध
- स्वयं उस ईश्वरीय मार्ग पर चलकर तत्संबंधी ज्ञान का अनुभव करना।

प्रो. रानाडे स्वयं को दार्शनिक की अपेक्षा रहस्यवादी अधिक मानते थे। उनके मत में–सभी रहस्यवादी दार्शनिक हो सकते है परन्तु सभी दार्शनिक रहस्यवादी नहीं हो सकते। रहस्यवाद का क्षेत्र दर्शन की अपेक्षा अधिक व्यापक है। दार्शनिक विवेचन की भूमिका ईश्वर साक्षात्कार के इच्छुक साधकों को प्रारंभिक संकेत देना है।।प्रो. रानाडे ने दर्शन और रहस्यवाद के सहयोग की आवश्यकता पर बल दिया। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए उन्होंने पूना स्थित अपने निवास ‘अध्यात्म भवन’ में 1924 ई. में दर्शन और धर्म की संयुक्त अकादमी की स्थापना की। जिसमें ईश्वर के अस्तित्व और प्रकृति से संबंधित समस्याओं के निराकरण के लिए दर्शन को बौद्धिक पक्ष और धर्म को प्रयोगात्मक पक्ष से समाधान करने का निर्देश था। रहस्यवाद के लिए दार्शनिक ज्ञान अनिवार्य नहीं है इसका प्रमाण अनेकों रहस्यवादी का अनपढ़ होना था।

मनव जीवन के विकास में नीति और रहस्यावाद दोनों में किसका स्थान अधिक महत्वपूर्ण है? इस संदर्भ में प्रो. रानाडे का मत है कि मनुष्य के सर्वांगीण मानसिक विकास के पूर्ण क्षेत्र पर विचार करें तो ज्ञात होगा कि मनुष्य की परम मानसिक उन्नति के लिए प्रज्ञात्मक तत्व को नैतिक तत्व से और नैतिक तत्व को प्रज्ञात्मक तत्व से पूरी तरह पृथक करना असंभव है। प्रज्ञा बिना किसी नैतिक आधार के बुद्धि वैदग्ध्य कुशलतम रूपों में पतित हो सकती है और नीतिहीन रहस्यवादी (यदि ऐसा संभव हो तो) मनुष्य के आध्यात्मिक विकास में कलंक रूप एक भयंकर जीव होगा।’’ अतः जैसे नीति के तर्कसंगत होने के लिए दृढ़तापूर्वक बुद्धि से सम्बद्ध होना चाहिए उसी प्रकार नीति को अपने पूर्ण पर्यवसान के लिए अध्यात्म प्रवण होना चाहिए। यही मानव जीवन का चरम लक्ष्य है। जैसे मानव व्यक्तित्व के विकास हेतु संकल्प और भावना को पृथक–पृथक नहीं किया जा सकता उसी प्रकार मानव के आध्यात्मिक विकास में वेदान्त ज्ञान नीति और रहस्यवाद को पृथक नहीं किया जा सकता।

सन्दर्भ

1. रानाडे रामचन्द्र दत्तात्रये–उपनिषद दर्शन का रचनात्मक सर्वेक्षण, अनुवादक रामानन्द तिवारी राजस्थान हिन्दी अकादमी, जयपुर
2. त्रिपाठी डॉ. जयशंकर कृत भारतीय समकालीन दर्शन में प्रो. रानाडे के योगदान का समीक्षात्मक अध्ययन
3. कूलकर्णी’ बी.आर.–क्रिटिकल एंड कन्स्ट्रक्टिव एस्पेक्ट ऑफ प्रो. रानाडेज फिलॉसफी।
4. प्रो. रानाडे द भगवद्गीता एज ए फिलाफसी ऑफ गॉड रियलाइजेशन